
प्रवचन नं. ११३ श्लोक - ३३, गाथा ३९ से ४३ दिनाङ्क शुक्रवार, २०-१०-१९७८
आषाढ कृष्ण ४, वीर निर्वाण संवत् २५०४

भावार्थ है न ? ३३ वें कलश का भावार्थ । यह ज्ञान की महिमा कही । ज्ञानस्वरूप आत्मा ने सब जानकर, स्वसन्मुख ढलकर पूर्णानन्द की प्राप्ति की, वह ज्ञानस्वरूप । जीव-अजीव एक होकर रंगभूमि में प्रवेश करते हैं । जीव और अजीव - दो संयोग से एक होकर अखाड़े की भूमि में, जैसे नृत्य करे, वैसे रंगभूमि में आकर खड़े हैं । उन्हें यह ज्ञान ही भिन्न-भिन्न जानता है । इस ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है कि मैं ज्ञान हूँ और रागादि, वे (मुझसे) भिन्न हैं । राग, वह अजीव है; वह चैतन्य की शक्ति के स्वभाव में से हुआ नहीं है । वह राग तो अजीव है, जिसमें चैतन्य के स्वभाव का अभाव है - ऐसे ज्ञान भिन्न-भिन्न जानता है ।

जैसे नृत्य में कोई स्वाङ्ग धरकर आये और उसे जो यथार्थरूप से जान ले.. बहुरूपिये का स्वाङ्ग पहचानते हैं न ! तो स्वाङ्गकर्ता उसे नमस्कार करके अपने रूप को जैसा का तैसा ही कर लेता है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना । ऐसा ज्ञान, सम्यग्दृष्टि पुरुषों को होता है.. जिन्हें ज्ञायकस्वभाव ध्रुव की दृष्टि हुई है, जिससे उन्हें सम्यग्ज्ञान हुआ है, उन्हें यह यथार्थ विवेक और भेदज्ञान होता है । आहाहा ! मिथ्यादृष्टि इस भेद को नहीं जानते । अज्ञानी, यह रागादि भाव मेरी चीज का नहीं है - ऐसा वे नहीं जानते । यह राग है, वह मैं हूँ, पुण्य आदि का भाव, वह मैं हूँ - ऐसा मानकर मिथ्यादृष्टि (जीव) भेद नहीं जानते ।

गाथा ३९-४३

अप्पाण-मयाणंता मूढा दु परप्प-वादिणो केई ।
 जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूवेति ॥३९॥
 अवरे अज्झवसाणेसु तिव्व-मंदाणुभागं जीवं ।
 मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवो त्ति ॥४०॥
 कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभाग-मिच्छंति ।
 तिव्वत्तण-मंदत्तण-गुणेहिं जो सो हवदि जीवो ॥४१॥
 जीवो कम्मं उहयं दोण्णि वि खलु केइ जीवमिच्छंति ।
 अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीव-मिच्छंति ॥४२॥
 एवंविहा बहु-विहा पर-मप्पाणं वदंति दुम्मेहा ।
 ते ण परमट्ट-वादी णिच्छय-वादीहिं णिद्धिटा ॥४३॥

आत्मानमजानन्तो मूढास्तु परात्म-वादिनः केचित् ।
 जीव-मध्यवसानं कर्म च तथा प्ररूपयन्ति ॥३९॥
 अपरेऽध्यवसानेषु तीव्र-मन्दानुभागं जीवम् ।
 मन्यन्ते तथाऽपरे नोकर्म चापि जीव इति ॥४०॥
 कर्मण उदयं जीव-मपरे कर्मानुभाग-मिच्छन्ति ।
 तीव्रत्व-मन्दत्व-गुणाभ्यां यः स भवति जीवः ॥४१॥
 जीव-कर्मोभयं द्वे अपि खलु केचिच्जीव-मिच्छन्ति ।
 अपरे संयोगेन तु कर्मणां जीव-मिच्छन्ति ॥४२॥
 एवंविधा बहु-विधाः परमात्मानं वदन्ति दुर्मेधसः ।
 ते न परमार्थ-वादिनः निश्चय-वादिभिर्निर्दिष्टाः ॥४३॥

इह खलु तदसाधारणलक्षणाकलनात्क्लीबत्वेनात्यंतविमूढाः संतस्तात्त्विकमात्मान-
मजानंतो बहवो बहुधा परमप्यातमानमिति प्रलपन्ति। नैसर्गिकरागद्वेषकल्माषितमध्य-
वसानमेव जीवस्तथाविधाध्यवसानात् अंगारस्येव काष्ण्यादतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्य-
मानत्वादिति केचित्। अनाद्यनंतपूर्वापरिभूतावयवैकसंस्मरणक्रियारूपेणक्रीडत्कर्मैव जीवः
कर्मणोऽतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित्। तीव्रमंदानुभवभिद्यमानदुरंतराग-
रसनिर्भराध्यवसानसंतान एव जीवस्ततोऽतिरिक्तस्यान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित्।
नवपुराणावस्थादिभावेन प्रवर्तमानं नोकर्मैव जीवः शरीरादतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्य-
मानत्वादिति केचित्। विश्वमपि पुण्यपापरूपेणाक्रामन् कर्मविपाक एव जीवः शुभाशुभ-
भावादतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित्। सातासातरूपेणाभि व्याप्तसमस्त-
तीव्रमंदत्वगुणाभ्यां भिद्यमानः कर्मानुभव एव जीवः सुखदुःखातिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्य-
मानत्वादिति केचित्। मज्जितावदुभयात्मकत्वादात्मकर्मोभयमेव जीवः कात्स्न्यतः
कर्मणोतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति केचित्। अर्थक्रियासमर्थः कर्मसंयोग एव
जीवः कर्मसंयोगत्वरट्वाया इवाष्टकाष्टसंयोगादतिरिक्तत्वेनान्यस्यानुपलभ्यमानत्वादिति
केचित्। एवमेवंप्रकारा इतरेऽपि बहुप्रकाराः परमात्मेति व्यपदिशन्ति दुर्मेधसः किन्तु न ते
परमार्थवादिभिः परमार्थवादिन इति निर्दिश्यन्ते।

अब, जीव-अजीव का एकरूप वर्णन करते हैं —

को मूढ़, आत्म-अजान जो, पर-आत्मवादी जीव है।

‘है कर्म, अध्यवसान ही जीव’ यों हि वो कथनी करे ॥ ३९ ॥

अरु कोई अध्यवसान में, अनुभाग तीक्षण मन्द जो।

उसको ही माने आतमा, अरु अन्य को नोकर्म को ॥ ४० ॥

को अन्य माने आत्मा बस, कर्म के ही उदय को।

को तीव्रमन्दगुणोंसहित, कर्मोहि के अनुभाग को ॥ ४१ ॥

को कर्म-आत्मा, उभय मिलकर जीव की आशा धरें।

को कर्म के संयोग से, अभिलाष आत्मा की करें ॥ ४२ ॥

दुर्बुद्धि यों ही और बहुविध, आतमा पर को, कहै।

वे सर्व नहिं परमार्थवादी, ये हि निश्चयविद् कहै ॥ ४३ ॥

गाथार्थ - [आत्मानम् अजानन्तः] आत्मा को न जानते हुए [परात्मवादिनः] पर को आत्मा कहनेवाले [केचित् मूढाः तु] कोई मूढ़, मोही, अज्ञानी तो [अध्यवसानं] अध्यवसान को [तथा च] और कोई [कर्म] कर्म को [जीवम् प्ररूपयन्ति] जीव कहते हैं।

[अपरे] अन्य कोई [अध्यवसानेषु] अध्यवसानों में [तीव्रमंदानुभागं] तीव्र-मन्द अनुभागगत को [जीवं मन्यन्ते] जीव मानते हैं [तथा] और [अपरे] दूसरे कोई [नोकर्म अपि च] नोकर्म को [जीवः इति] जीव मानते हैं [अपरे] अन्य कोई [कर्मणः उदयं] कर्म के उदय को [जीवम्] जीव मानते हैं, कोई '[यः] जो [तीव्रत्वमंदत्वगुणाभ्यां] तीव्र मन्दतारूप गुणों से भेद को प्राप्त होता है, [सः] वह [जीवः भवति] जीव है' इस प्रकार [कर्मानुभागम्] कर्म के अनुभाग को [इच्छन्ति] जीव इच्छते हैं (-मानते हैं)। [केचित्] कोई [जीवकर्मोभयं] जीव और कर्म [द्वे अपि खलु] दोनों मिले हुआओं को ही [जीवम् इच्छन्ति] जीव मानते हैं [तु] और [अपरे] अन्य कोई [कर्मणां संयोगेन] कर्म के संयोग से ही [जीवम् इच्छन्ति] जीव मानते हैं।

[एवंविधाः] इस प्रकार के तथा [बहुविधाः] अन्य भी अनेक प्रकार के [दुर्मेधसः] दुर्बुद्धि-मिथ्यादृष्टि जीव [परम्] पर को [आत्मानं] आत्मा [वदन्ति] कहते हैं। [ते] उन्हें [निश्चयवादिभिः] निश्चयवादियों ने (-सत्यार्थवादियों ने) [परमार्थवादिनः] परमार्थवादी (-सत्यार्थवक्ता) [न निर्दिष्टाः] नहीं कहा है।

टीका - इस जगत में आत्मा का असाधारण लक्षण न जानने के कारण नपुंसकता से अत्यन्त विमूढ़ होते हुए, तात्त्विक (परमार्थभूत) आत्मा को न जाननेवाले बहुत से अज्ञानी जन अनेक प्रकार से पर को भी आत्मा कहते हैं, बकते हैं। कोई तो ऐसा कहते हैं कि स्वाभाविक, अर्थात् स्वयमेव उत्पन्न हुए राग-द्वेष के द्वारा मलिन जो अध्यवसान (मिथ्या अभिप्राययुक्त विभावपरिणाम), वह ही जीव है क्योंकि जैसे कालेपन से अन्य अलग कोई कोयला दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार अध्यवसान से भिन्न अन्य कोई आत्मा दिखाई नहीं होता ॥१॥

कोई कहते हैं कि अनादि जिसका पूर्व अवयव है और अनन्त जिसका भविष्य

का अवयव है—ऐसी एक संसरणरूप (भ्रमणरूप) जो क्रिया है, उसरूप से क्रीड़ा करता हुआ कर्म ही जीव है क्योंकि कर्म से भिन्न अन्य कोई जीव दिखाई नहीं देता ॥२ ॥

कोई कहते हैं कि तीव्र-मन्द अनुभव से भेदरूप होते हुए, दुरन्त (जिसका अन्त दूर है—ऐसा) रागरूप रस से भरे हुए अध्यवसानों की संतति (परिपाटी) ही जीव है क्योंकि उससे अन्य अलग कोई जीव दिखाई नहीं देता ॥३ ॥

कोई कहता है कि नयी और पुरानी अवस्था इत्यादि भाव से प्रवर्तमान नोकर्म ही जीव है क्योंकि इस शरीर से अन्य अलग कोई जीव दिखाई नहीं देता ॥४ ॥

कोई यह कहते हैं कि समस्त लोक को पुण्य-पापरूप से व्याप्त करता हुआ कर्म का विपाक ही जीव है क्योंकि शुभाशुभभाव से अन्य अलग कोई जीव दिखाई नहीं देता ॥५ ॥

कोई कहते हैं कि साता-असातारूप से व्याप्त समस्त तीव्र-मन्दत्वगुणों से भेदरूप होनेवाला कर्म का अनुभव ही जीव है क्योंकि सुख-दुःख से अन्य अलग कोई जीव दिखाई नहीं देता ॥६ ॥

कोई कहते हैं कि श्रीखण्ड की भाँति उभयरूप मिले हुए आत्मा और कर्म, दोनों ही मिलकर जीव हैं क्योंकि सम्पूर्णतया कर्मों से भिन्न कोई जीव दिखाई नहीं देता ॥७ ॥

कोई कहते हैं कि अर्थक्रिया में (प्रयोजनभूतक्रिया में) समर्थ — ऐसा जो कर्म का संयोग, वह ही जीव है क्योंकि जैसे आठ लकड़ियों के संयोग से भिन्न अलग कोई पलंग दिखाई नहीं देता, इसी प्रकार कर्मों के संयोग से अन्य अलग कोई जीव दिखाई नहीं देता। (आठ लकड़ियाँ मिलकर पलंग बना, तब वह अर्थक्रिया में समर्थ हुआ; इसी प्रकार यहाँ भी जानना) ॥८ ॥

इस प्रकार आठ प्रकार तो यह कहे और ऐसे-ऐसे अन्य भी अनेक प्रकार के दुर्बुद्धि (विविध प्रकार से) पर को आत्मा कहते हैं परन्तु परमार्थ के ज्ञाता उन्हें सत्यार्थवादी नहीं कहते।

भावार्थ : जीव-अजीव दोनों अनादिकाल से एकक्षेत्रावगाहसंयोगरूप से मिले हुए हैं, और अनादि काल से ही पुद्गल के संयोग से जीव की अनेक विकारसहित अवस्थाएँ हो रही हैं। परमार्थदृष्टि से देखने पर, जीव तो अपने चैतन्यत्व आदि भावों

को नहीं छोड़ता और पुद्गल अपने मूर्तिक, जड़त्व आदि को नहीं छोड़ता परन्तु जो परमार्थ को नहीं जानते, वे संयोग से हुए भावों को ही जीव कहते हैं क्योंकि पुद्गल से भिन्न परमार्थ से जीव का स्वरूप सर्वज्ञ को दिखाई देता है तथा सर्वज्ञ की परम्परा के आगम से जाना जा सकता है, इसलिए जिनके मत में सर्वज्ञ नहीं हैं, वे अपनी बुद्धि से अनेक कल्पनाएँ करके कहते हैं। उनमें से वेदान्ती, मीमांसक, सांख्य, योग, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, चार्वाक आदि मतों के आशय लेकर आठ प्रकार तो प्रगट कहे हैं; और अन्य भी अपनी -अपनी बुद्धि से अनेक कल्पनाएँ करके अनेक प्रकार से कहते हैं, सो उन्हें कहाँ तक कहा जाए ?

गाथा - ३९ से ४३ पर प्रवचन

अब, जीव-अजीव का एकरूप वर्णन करते हैं —

अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई।
 जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूवेत्ति॥३९॥
 अवरे अज्झवसाणेसु तिब्बमंदाणुभागगं जीवं।
 मण्णंति तहा अवरे णोकममं चावि जीवो त्ति॥४०॥
 कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभागमिच्छंति।
 तिब्बत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो॥४१॥
 जीवो कम्मं उहयं दोण्णि वि खलु केई जीवमिच्छंति।
 अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति॥४२॥
 एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा।
 ते ण परमट्टवादी णिच्छयवादीहिं णिदिट्ठा॥४३॥

हरिगीत

को मूढ़, आत्म-अज्ञान जो, पर-आत्मवादी जीव है।
 'है कर्म, अध्यवसान ही जीव' यों हि वो कथनी करे॥ ३९॥

अरु कोई अध्यवसान में, अनुभाग तीक्ष्ण मन्द जो ।
 उसको ही माने आत्मा, अरु अन्य को नोकर्म को ॥ ४० ॥
 को अन्य माने आत्मा बस, कर्म के ही उदय को ।
 को तीव्रमन्दगुणोंसहित, कर्मोहि के अनुभाग को ॥ ४१ ॥
 को कर्म-आत्मा, उभय मिलकर जीव की आशा धरें ।
 को कर्म के संयोग से, अभिलाष आत्मा की करें ॥ ४२ ॥
 दुर्बुद्धि यों ही और बहुविध, आत्मा पर को, कहै ।
 वे सर्व नहिं परमार्थवादी, ये हि निश्चयविद् कहै ॥ ४३ ॥

दुम्मेहा शब्द है न, दुम्मेहा का दुर्बुद्धि अर्थ किया । दुम्मेहा शब्द है न (गाथा) ४३ में, उसका अर्थ दुर्बुद्धि किया । दुम्मेहा - दुर्बुद्धि ।

टीका - इस जगत में.. इस जगत में—ऐसा कहकर जगत सिद्ध किया । जगत है । इस जगत में आत्मा का असाधारण लक्षण न जानने के कारण.. भगवान आत्मा का असाधारण (लक्षण), जो अन्यत्र न हो ऐसा । आनन्द और ज्ञान जिसका लक्षण है—ऐसा नहीं जानने के कारण नपुंसकता से.. उसका वीर्य नपुंसक है, कहते हैं । आहाहा ! नपुंसकरूप से राग को अपना माने, वह नपुंसक है । आहाहा ! नपुंसक - हीजड़ा है—ऐसा कहते हैं । आहाहा ! क्या करुणा की भाषा है, भाई ! अरे ! भगवान पूरण ज्ञान-आनन्द के लक्षण से स्वाभाविक वस्तु पड़ी है, उसे तू मानता नहीं और इन रागादि को अपना मानता है, यह तू नपुंसक है । आहाहा ! नपुंसक को जैसे धर्म प्रजा नहीं होती; वैसे राग को अपना माननेवाले को धर्म प्रजा नहीं होती । आहाहा ! नपुंसक को वीर्य नहीं होता, इसलिए प्रजा नहीं होती । इसे वीर्य जो नपुंसकरूप हुआ है रागादि में,... आहाहा ! उसे सम्यग्दर्शन की प्रजा नहीं होती; उसे मिथ्यादर्शन की दशा होती है । आहाहा !

जगत में भगवान आत्मा का असाधारण लक्षण. लक्षण नहीं जानने के कारण नपुंसकता से.. आहाहा ! वीर्य का गुण लिया है न वहाँ ? आत्मा में एक वीर्य नाम का—पुरुषार्थ नाम का.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त सामर्थ्यवाला गुण है । उस गुण का कार्य तो ऐसा होता है (कि).. आहाहा ! अपने शुद्धस्वभाव की रचना करे, उसे वीर्य कहते हैं,

आहाहा! उसे पुरुषार्थ कहते हैं कि जो वीर्य अपने अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि की वर्तमान निर्मलपर्याय की रचना करे, उसे वीर्यगुण कहते हैं। आहाहा! राग को और दया, दान के विकल्प को अपना माने,.. आहाहा! इसका अर्थ यह कि रागादि क्रिया से मुझे लाभ होगा—ऐसा माननेवाले राग को अपना मानते हैं। अपने स्वभाव से लाभ होता है; ऐसे (ही) इस राग से लाभ होता है.. आहाहा!—ऐसा माननेवाले नपुंसकपने हैं। उनका वीर्य नपुंसक है, कहते हैं। आहाहा!

अत्यन्त विमूढ़.. दूसरी भाषा, आहाहा! शुभ-अशुभराग.. निहालभाई को इतना ही कहा था—निहालभाई सोगानी आये थे न! इतना कहा था - भाई! राग और आत्मा - ज्ञान दो भिन्न चीज है। बस! इतना ही सुना। समिति के रसोई में चले गये—शाम से सबेरे तक—पूरी रात, बस! यह राग और भगवान दो भिन्न है, प्रभु! चाहे तो राग दया, दान विकल्प का हो या गुणी और गुण के भेद का राग-विकल्प हो, उसके राग से भगवान अन्दर भिन्न चीज है। आहाहा! उन्होंने एक रात विचार-मंथन किया और दिन उगने से पहले निर्विकल्पदशा प्रगट करके खड़े हो गये—इस समिति में। सोगानी, जिनकी द्रव्यदृष्टि प्रकाश पुस्तक बाहर प्रकाशित हुई है न? देखी है या नहीं त्रिलोकचन्दजी? द्रव्यदृष्टि प्रकाश देखी है? (श्रोता - हाँ।) ठीक। आहाहा! एक रात में राग और ज्ञान दो भिन्न.. प्रभु! आहाहा! यह घोलन करते.. करते.. करते.. पूरी रात्रि, हों! आहाहा! यह राग से भिन्न भगवान ज्ञानस्वरूप का निर्विकल्प अनुभव किया। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं कि जिसे राग को—यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हैं, वह तो राग है; उस राग से मुझे समकित होगा, उस राग से मुझे धर्म होगा—यह माननेवाला.. प्रभु! कठोर बात है प्रभु, हों! कहते हैं कि उसका वीर्य नपुंसक है। आहाहा!

भगवान आत्मा, राग से भिन्न है। यहाँ तो बहुत प्रकार लेंगे, परन्तु मुख्य (बात) यहाँ है। आहाहा! जितने विकल्प मात्र - वृत्ति उठते हैं, वे चैतन्यदल-ज्ञायकदल में वे नहीं हैं.. आहाहा!—ऐसा न मानकर, जो राग है, वह मेरा है अथवा राग है, वह मुझे लाभकर्ता माना—इसका अर्थ ही यह है कि राग को अपना माना। आहाहा! सूक्ष्म बात पड़ती है। लोग कहते हैं न, व्यवहाररत्नत्रय करने से निश्चय प्राप्त होता है। आहाहा! प्रभु! इस राग

से निश्चय प्राप्त हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि राग ही जीव का स्वभाव है और स्वभाव से स्वभाव की प्राप्ति होती है। आहाहा! धीरजवान का काम है बापू! यह कोई.. आहाहा! इस नपुंसकता से अत्यन्त विमूढ़ होते हुए... राग के कण को—शुभराग को.. अरे प्रभु! देखो! यहाँ तो ऐसा कहा है कि अभी शुभयोग ही होता है.. तो प्रभु! शुभयोग ही धर्म है? आहाहा! वह शुभयोग राग है और राग मेरा है—ऐसा माननेवाला नपुंसक है, हीजड़ा है, पावैया है; वह आत्मा नहीं। ऐसी बातें! आहाहा! है? (श्रोता - परम सत्य।) आहाहा!

फिर सब उतारेंगे। आठ बोल है न? अत्यन्त विमूढ़ होते हुए... भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु, वह भिन्न चीज है, उसमें अत्यन्त विमूढ़ होते हुए, इस राग की कणिका को अपनी मानते हैं, वे वीर्यहीन अत्यन्त विमूढ़ हैं। आहाहा! तात्त्विक आत्मा को नहीं जाननेवाले.. तात्त्विक-परमार्थभूत.. भगवान आत्मा, इस राग की क्रिया के परिणाम से भिन्न है। आहाहा! क्योंकि कोई—चैतन्य के अनन्त गुणों में कोई गुण ऐसा नहीं, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अपार गुण—ऐसे गुण अनन्त अपार.. अपार.. अनन्त का अन्त नहीं, इतने गुण (हैं) परन्तु इतने गुणों में कोई गुण ऐसा नहीं है कि विकार करे, आहाहा! राग करे, ऐसे अनन्त.. अनन्त गुणों में कोई एक भी गुण नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इस कारण यह राग, स्वभाव के लक्ष्य बिना, पर के लक्ष्य से हुआ विकार-राग, वह परमार्थ के जाननेवालों को नहीं है। इस राग को अपना माने, इस शुभयोग से आत्मा को लाभ माने.. प्रभु, प्रभु! कठोर बात, भाई! यह तात्त्विक आत्मा, आत्मा तात्त्विक अर्थात्? राग है, वह तो विकृत अवस्था है, वह कहीं तात्त्विक आत्मा नहीं। आहाहा! परमार्थभूत भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द जिसका स्वरूप है—ऐसे तात्त्विक भगवान आत्मा.. आहाहा! को नहीं जानते हुए ऐसे.. नहीं जानते ऐसे, बहुत से अज्ञानी जन.. थोड़े नहीं, कहते हैं—बहुत से अज्ञानीजन; आहाहा! बहुत प्रकार से बहुत प्रकार लेंगे न? पर को भी आत्मा कहते हैं.. कहते हैं का अर्थ मानते हैं। आहाहा! रागादि आठ प्रकार लेंगे बहुत। अनेक प्रकार से पर को भी.. अपने को तो ठीक, परन्तु पर को भी अपना मानते हैं—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जो भगवान आत्मा राग और कर्म से भिन्न है। कर्म, कहेंगे कर्म मेरे हैं अर्थात् क्या? कि कर्म से मुझे राग होता है और राग से मुझे लाभ होता है, इसलिए आठ कर्म मेरे हैं..

आहाहा! (ऐसा) बाद में कहेंगे अन्दर। आत्मा को नहीं जानते हुए ऐसे बहुत अज्ञानीजन बहुत प्रकार से पर को भी आत्मा कहते हैं। अपने को कहें ही, यह माना जा सकता है, वे तो पर को भी कहते हैं—ऐसा कहते हैं। जो पर, वे रागादि पर आत्मा नहीं हैं; आहाहा! (उन) पर को भी आत्मा कहते हैं। आहाहा! बकते हैं.. ऐसा नहीं? लो!

‘प्रलयन्ति’ है न? ‘प्रलयन्ति-प्रलयन्ति-प्रकृष्टे लवे’ है। संस्कृत टीका में है ‘लवे’ है। आहाहा! शब्द तो एक ही है वह, है! कहते हैं कि बकते हैं—सब एक ही है। ‘प्रलयन्ति’ बकते हैं वे तो। आहाहा! पागल मनुष्य जैसे बकता है, आहाहा! वैसे आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप प्रभु को रागवाला हूँ, कर्मवाला हूँ—ऐसा बकते हैं.. आहाहा! ‘प्रलयन्ति’ है न भाई! उसका यह अर्थ है। ‘प्रलयन्ति’ आहाहा! परम आत्मानम् इति प्रलयन्ति, बहु बहुधा परम आत्मानम् इति प्रलयन्ति... ‘आत्मानम् इति’ वहाँ से ‘भी’ निकाला लगता है। आत्मानम् इति ‘अपि’ शब्द है न? आहाहा! प्रलयन्ति.. भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु को सब अज्ञानी मूढ़, यह राग का परिणाम जो है - पुण्य-पाप का भाव है, वह मेरा है, मुझमें हैं - ऐसा बकते हैं, कहते हैं। प्ररूपित करते हैं—ऐसा न लेकर बकते हैं.. (- ऐसा कहा है।) आहाहा! लोगों को ऐसा कठिन काम लगता है।

कोई तो ऐसा कहते हैं कि.. अब बोल शुरु किया। स्वाभाविक (अर्थात्) स्वयमेव उत्पन्न हुए राग-द्वेष के द्वारा मलिन जो अध्यवसान,.. आहाहा! (मिथ्या अभिप्राययुक्त विभाव परिणाम)... मिथ्या अभिप्राय सहित विभाव परिणाम.. ये पुण्य और पाप के परिणाम, ये राग-द्वेष द्वारा मलिन हैं—ऐसा जो अध्यवसान / एकत्वबुद्धि है, उसे ऐसा (जीव) कहते हैं। मिथ्या अभिप्राय युक्त विभाव परिणाम, वह ही जीव है.. वह जीव है, उसकी पर्याय में होते हैं, इसलिए मैं जीव हूँ। आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव— दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव,.. आहाहा! यह मैल है - राग के मैलवाला जीव है.. आहाहा! कठिन बात.. ऐसा अध्यवसान वह, वह ही जीव है—ऐसा फिर वह ‘ही’ जीव है, राग की एकत्वबुद्धि, वह ‘ही’ जीव है। आहाहा!

भगवान आनन्द का नाथ प्रभु भिन्न है, उसे (तो) अत्यन्त मूढ़ जीव जानते नहीं.. आहाहा!

श्रोता : उसमें क्या भूल हुई ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्या अभिप्राय—महा झूठा; जो राग का भाव, स्वभावभाव नहीं है; विभावभाव है, कृत्रिम है, क्षणिक है, मलिन है, दुःख है—उसे भगवान आत्मा के साथ मानते हैं,.. आहाहा! वे सब नपुंसकरूप से अत्यन्त विमूढ़ होते हुए, परमार्थ भगवान को नहीं जानते हुए, उसे अपना है—ऐसा मानते हैं। आहाहा! यह क्या कहा ? कि स्वाभाविक-स्वयमेव उत्पन्न हुए राग-द्वेष के द्वारा.. यह स्वयमेव उत्पन्न हुआ है मेरे स्वभाव की पर्यय में। आहाहा! ऐसा दृष्टान्त आयेगा।

क्योंकि जैसे कालेपन से अन्य अलग कोई कोयला दिखायी नहीं देता.. देखो! कैसा दृष्टान्त! कोयला.. कोयला काला है न ? तो उसकी पर्याय भी काली है तो कोयला कालेपन से अलग दिखायी नहीं देता। आहाहा! दृष्टान्त तो देखो! कोयला जैसे कालेपने से अलग नहीं है; वैसे मेरा भगवान आत्मा... भगवान उसे कहाँ पता है ? आत्मा, मलिन परिणाम से अलग नहीं है। आहाहा!

श्रोता : परिणाम, वह द्रव्य है—ऐसा बहुत जगह आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम उसके हैं; यह तो पर से भिन करने के लिए (कहा) परन्तु ये परिणाम राग-द्वेष के हैं, इसकी चीज में नहीं हैं; ये वस्तु के नहीं हैं। आहाहा!

वस्तु तो, कहा न पहले! उसमें अनन्त.. अनन्त.. अनन्त अपार गुण हैं प्रभु में, आहाहा! परन्तु कोई एक गुण विकार करे—ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा! उसका गुण का गुण विकार करे, गुण का गुण राग को करे—ऐसा गुण का गुण नहीं है। आहाहा!

श्रोता : दूसरा आकर राग कर जाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वयं अज्ञानरूप से खड़ा करता है—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान ज्ञानस्वरूप आनन्द प्रभु को नहीं जानते हुए, नपुंसकता से अत्यन्त विमूढ़ होते हुए, इस राग की एकत्वबुद्धि के परिणाम मेरे हैं; जैसे कोयले की कालिमा कोयले से अलग नहीं होती, वैसे मलिन परिणाम मुझसे अलग नहीं होते—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! ओहोहो! यह आत्मख्याति टीका है! जैसे, यह अज्ञानी का

दृष्टान्त है, कालेपन से-कालेपन की दशा से कोयला अलग है, कहते हैं ? कालेपन की दशा—अवस्था हों, उससे कोयला अलग है ? आहाहा! **अन्य अलग कोई कोयला दिखायी नहीं देता..** ऐसा अज्ञानी कहता है। आहाहा! उसी प्रकार राग-द्वेष परिणाम मेरे आत्मा से अलग हों—ऐसा दिखायी नहीं देता। बात तो सच्ची है, वहाँ देखता है न, मेल का देखता है और दृष्टान्त कोयले का दिया। जैसे, कोयले की कालिमा कोयले से अलग नहीं है; वैसे मलिन परिणाम आत्मा से अलग नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा को तो पूरा मलिन सिद्ध किया। मलिन भगवान, उससे मलिन परिणाम अलग नहीं है।

श्रोता : दृष्टान्त ऐसा दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त - यह दिया है; इसीलिए तो स्वयं आचार्य ने इस प्रकार दिया है। आहाहा! इस कालेपन से, कालिमा-कोयला अलग देखने में नहीं आता। समझ में आया ? कालापना, यह दशा और कोयला, वह वस्तु, तो उसके कालेपन की दशा से कोयला अलग तो दिखता नहीं; ऐसे (ही) पुण्य और पाप के मलिन परिणाम से भगवान (आत्मा) अलग तो देखने में आता नहीं - ऐसा अज्ञानी का तर्क है। आहाहा!

भाई! यह तो अध्यात्म की बातें हैं। भाई! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा! **उसी प्रकार तथाविध अध्यवसान से भिन्न..** अर्थात् राग और एकताबुद्धि - ऐसा जो अध्यवसान, उससे भिन्न **अन्य कोई आत्मा दिखायी नहीं देता..** हमें तो राग दिखता है, वही आत्मा (है।) आहाहा! यह दया, दान, व्रत के परिणाम-शुभयोग के (परिणाम) दिखते हैं, वही आत्मा। हमें दूसरा कोई आत्मा दिखायी नहीं देता। अररर!

श्रोता : पंचम काल में तो ऐसा ही होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! पंचम काल में... इसलिए क्या कोई पंचम काल में हलुआ बनाये तो शक्कर डाले बिना - कीचड़ डालते होंगे ? आहाहा! पंचम काल के ऐसे अज्ञानी ऐसा मानते हैं - ऐसा कहते हैं। पंचम काल के ज्ञानी ऐसा नहीं मानते - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? दोनों पंचम काल के हैं। **अध्यवसान से भिन्न अन्य कोई आत्मा दिखायी नहीं देता।** यह एक बोल हुआ। एक बोल।

कोई कहते हैं कि अनादि जिसका पूर्व अवयव है और अनन्त जिसका भविष्य का अवयव है - ऐसी एक संसरणरूप (भ्रमणरूप) जो क्रिया है, उसरूप से क्रीड़ा करता हुआ कर्म.. वह जीव है। कर्म ही जीव है। भूतकाल में भी कर्म ही था, आत्मा के साथ सम्बन्ध भूतकाल में, परन्तु उस सम्बन्धी राग की क्रिया-कर्म की क्रिया, उससे पृथक् नहीं है। अनन्त जिसका भविष्य का अवयव है... कर्म का, हाँ! ऐसी जो एक भ्रमणरूपी क्रिया.. भ्रमण की क्रिया, आहाहा! उसरूप क्रीड़ा करता हुआ कर्म.. यह कर्म क्रीड़ा करता है। भ्रमण में कर्म क्रीड़ा करता है-परिभ्रमण में। आहाहा! क्योंकि कर्म से भिन्न अन्य कोई जीव दिखाई नहीं देता। आहाहा! यहाँ तो जीव को पर्याय में जो परिभ्रमण है न! उस परिभ्रमण का कारण कर्म है तो उस कर्म का जो पूर्व में अवयव है, वह भी परिभ्रमण का है, भविष्य में भी परिभ्रमण का कारण है, वह कर्म है। उस कर्म से भगवान (आत्मा) हमें तो भिन्न दिखायी नहीं देता। आहाहा! आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो ऐसा कहते हैं कि जो कर्म है न? उससे जो परिभ्रमण खड़ा हुआ है, और वह परिभ्रमण भूतकाल में भी था तथा भविष्य में भी कर्म के कारण परिभ्रमण खड़ा रहेगा, इसलिए कर्म है, वही आत्मा है। आहाहा! ऐसा वह कहता है। पूर्व अवयव - अनादि जिसका अवयव अर्थात् कर्म का भाग - क्रिया है न भ्रमण की-उसका कारण कर्म है, वह पूर्व अवयव है और अनन्त जिसका भविष्य का-अनन्त-अनन्त काल ऐसा ही रहेगा, आहाहा! क्योंकि कर्म से अन्य कोई जीव दिखायी नहीं देता। कर्म ने ज्ञान की दशा हीन की, कर्म ने ज्ञान की दशा हीन करके कर्म इसे भटकाता है - ऐसा कहता है। आहाहा!

श्रोता : कर्म से राजा, कर्म से रंक, कर्म ने डाला आड़ा (टेड़ा) अंक (- ऐसा आता है न) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये सब बातें (हैं)। दर्शनमोहनीय कर्म है, उससे मिथ्यात्व होता है; भूतकाल में भी उसके कारण हुआ है और भविष्य में भी उसके कारण होगा - यही वस्तु है, आत्मा उससे कोई भिन्न है, आहाहा! (ऐसा नहीं है।) ज्ञानावरणी कर्म के कारण गत काल में भी ज्ञान की हीन अवस्था-परिभ्रमण की हुई, वह कर्म के कारण है और ऐसी

की ऐसी हीन अवस्था भविष्य में भी रहेगी। वह परिभ्रमण का कारण (है), उसका कारण भी कर्म ही है। आहाहा! कठिन परन्तु.. यह कर्मकाण्ड का स्पष्टीकरण किया है। यह चारित्रमोह कर्म है, वह यहाँ चारित्रदोष उत्पन्न कराकर.. कराया है और करायेगा; इसलिए यही जीव है (- ऐसा अज्ञानी मानते हैं।) आहाहा!

वेदनीयकर्म के कारण सुख-दुःख के संयोग और फिर अन्दर मोह के कारण सुख-दुःख की वृत्ति करता है - यह सब कर्म के कारण है। भूत (काल) में (ऐसा) था और भविष्य (काल) में रहेगा, परन्तु कोई इससे - सुख-दुःख की कल्पना से और सुख-दुःख के संयोग से भिन्न आत्मा है - ऐसा है नहीं कुछ! आहाहा!

श्रोता : शास्त्र में आता है न - कम्मो वलियो धम्मो बलियो...।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। कर्म बलियो, वह तो भावकर्म बलियो (बलवान) की बात की है। किसी समय, विकृत अवस्था है, उसका बल है और किसी समय स्वभाव की अवस्था का बल है - ऐसा कहा है। आहाहा!

कर्म जड़ है, अजीव है, जो आत्मा को स्पर्श ही नहीं करते; आत्मा उन्हें स्पर्श नहीं करता। 'कर्म बिचारै कौन भूल मेरी अधिकाई' - नहीं आता ?

श्रोता : यह तो एक-दो जगह आता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : जगह, जगह यही है। आहाहा! मेरी भूल मैंने की; कर्म ने नहीं करायी। आहाहा! मलिनता की जो पर्याय है, वह मैंने मेरे स्वभाव से विपरीत मैंने की है, कर्म ने नहीं करायी है। वह कहता है - कर्म ने करायी है और यह कर्म का अंश है, ऐसा का ऐसा यह कर्म का अंश रहेगा; ऐसे का ऐसे परिभ्रमण कर्म के कारण रहनेवाला है; इसलिए कर्म, वह जीव है.. आहाहा! ऐसा है। परन्तु (इसे) फुर्सत कहाँ है ऐसा सब निर्णय करने की। शास्त्र में आवे लो! कि ज्ञानावरणी कर्म ज्ञान को रोकता है, दर्शनावरणी कर्म दर्शन को रोकता है, निद्रावरणी के कारण नींद आती है! लो, ठीक! यह तो निमित्त के कथन हैं, उससे होता है - ऐसा नहीं है। निद्रा में प्रमाद है, वह तो स्वयं का दोष है, वह निद्रावरणीय ने नहीं कराया है।

श्रोता : उदीरणा से आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उदीरणा अर्थात् स्वयं विपरीतता करता है। पर्याय में विपरीतता करता है इसलिए; कर्म के कारण नहीं। आहाहा!

यही विवाद उठा था न, हमारे (संवत्) ७१ में, पहले 'लाठी' के चातुर्मास में (संवत्) ७१ (में) चार महीने उपवास थे एकांतरा - एक दिन उपवास एक दिन भोजन और दूसरे दिन एक बार खाना, चारों ही महीने, हाँ! 'लाठी'। शास्त्र का उपधान करते थे - मैं (और) फिर उसके कारण हमारे गुरु हीराजी महाराज और मूलचन्दजी - तीनों उपवास करते चारों महीने के। उसमें भगवती (सूत्र) पढ़ते थे, उसमें से यह आया - मैंने कहा - देखो! कर्म से आत्मा में विकार होता है - यह बात झूठ है, मिथ्या है, कहा।

श्रोता : भगवती (सूत्र) में से निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवती (सूत्र), उसमें से निकाला था। संशय मिथ्यात्व है, वह कर्म के कारण नहीं - कहा देखो! इस अपनी विपरीत श्रद्धा के कारण मिथ्यात्व है, कर्म के कारण नहीं तथा उलटी श्रद्धा से मिथ्यात्व है और सुलटे पुरुषार्थ से मिथ्यात्व का नाश करके सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। उसे मिथ्यात्व में कर्म की कोई अपेक्षा नहीं है और समकित में कर्म के अभाव की अपेक्षा भी उसे नहीं है। आहाहा! खलबलाहट हो गयी थी। (संवत्) ७१ की साल है, ६३ वर्ष हुए, खलबलाहट - खलबलाहट! वे हमारे गुरुजी हीराजी महाराज थे, वे कुछ नहीं बोले विचारे, परन्तु दामोदर सेठ एक गृहस्थ थे, उस समय दस लाख की पूँजी थी। खलबलाहट.. खलबलाहट.. यह बिना डोरे की पड़ाई (पतंग) उड़ी.. ऐसा हमारे गुरु कहते नहीं, ऐसा हमने कभी सुना नहीं, यह नया कहाँ से निकाला? कुछ नया नहीं भाई! यह वस्तु के स्वरूप की विपरीतता स्वयं करता है; कर्म से नहीं, बिल्कुल नहीं, कहा - किंचितमात्र नहीं। उल्टे पुरुषार्थ से विकार और सुलटे पुरुषार्थ से विकार का नाश, बस! यह बात है।

श्वेताम्बर के शास्त्र में सब गड़बड़ है। यही बात हुई थी न, रामविजय के साथ। जेठालाल खेड़ावाले (ने) यहाँ का सुना, ओह! यह बात दूसरी लगती है! पचास प्रश्न श्वेताम्बर साधु और आचार्य के लिये निकाले कि यदि अपने में से यह मिल जाए तो फिर मेरे सम्प्रदाय बदलना मिटे। पचास प्रश्न रखे - एक व्यक्ति ने जवाब दिया किन्तु उल्टा;

तो फिर रामविजय के पास गये। रामविजय को जेठाभाई ने चर्चा की (तो) रामविजय ने कहा - पहले तुम्हें यह मान्य है कि कर्म से जीव को विकार होता है - यह मान्य है? फिर चर्चा करेंगे। कहो, वह बड़ा आचार्य रामविजय। इन्होंने कहा - भाई! हमें यह मान्य नहीं, कर्म से विकार होता है। वह विकार स्वयं से होता है। तब अपने को चर्चा करके क्या काम है? कर्म से विकार होता है - ऐसा मानों तो चर्चा करते हैं, कहो। आहाहा!

इसी प्रकार 'लीमड़ी' में वे साधु आये थे। कैसे? चन्द्रशेखर, दो साधु थे न? दो साधु थे और दो-तीन गृहस्थ थे। गृहस्थ बिचारे नरम थे, साथ में खड़े थे। उन्होंने कहा कि अपने चर्चा करते हैं। मैंने कहा - देख भाई! हम किसी के साथ चर्चा नहीं करते। तब वे बोले - इस चश्में के बिना दिखता है? यह चर्चा हो गयी - कहा। यह चश्मा है तो दिखता है या नहीं? यह परद्रव्य यहाँ है तो सुमन दिखता है या नहीं? कहा - ऐसा नहीं है, बापू! देखने की पर्याय जीव स्वयं अपने से करता है, तब इसे निमित्त कहा जाता है। आहाहा! इसे तो बहुत वर्ष हुए। पहले साल होगा? पहले विहार में भाई वहाँ थे, तब जंबकभाई खड़े थे। आहाहा! अरे! तुम चर्चा नहीं करोगे तो तुम्हारी महत्ता क्या रहेगी? कहा - भाई! हमारी महत्ता कुछ नहीं; हम तो जहाँ हैं वहाँ हैं.. ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा कि तुम सिंह हो तो मैं सिंह का बच्चा हूँ। भाई! हम कुछ कहते नहीं, बापू! हम सिंह हैं।

चन्द्रशेखर है न, जीवप्रताप का भतीजा, (उसने) दीक्षा ली है, सब श्रद्धा-भ्रष्ट। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात! यह तो पूरा श्वेताम्बर सम्प्रदाय ही गृहीत मिथ्यात्व से खड़ा हुआ है। कठोर बात है, बापू! आहाहा! (वहाँ तो) कर्म से होता है, बस! यह कर्म से होता है..। यहाँ कहते हैं - कर्म से होता है और उसके कारण मैं भटकता हूँ - ऐसा माने तो वह मिथ्यादृष्टि है - अत्यन्त झूठ है। उसने यह कहा कि इसके कारण ऐसा होता है, इसके कारण ऐसा हातो है... यहाँ इनकार करते हैं कि अज्ञानी ऐसा मानते हैं, कर्म के कारण मैं भटका। यह कर्म का अवयव जो भटकाता है, कर्म भटकायेगा - यह कर्म है - ऐसा मानता है, वह मूढ़ और अज्ञानी है - ऐसा सिद्ध किया है। कठोर बात है, बापू! और स्थानकवासी तो उसमें से - श्वेताम्बर में से निकले हैं; वे तो फिर अधिक भ्रष्ट हैं। उनमें फिर तेरापंथी निकले, वे फिर अधिक भ्रष्ट (हैं)। तुलसी, तुम्हारे गाँव का-लाडनू का है न! क्या करें विचारे? उन्हें मिला नहीं और जो परम्परा मिली, उस प्रकार माना! आहाहा!

अरे! यहाँ यह कहते हैं, अज्ञानी ऐसा मानता है, है ? कि पूर्व अवयव वह कर्म का ही भाग है। आहा! भटकने का और भविष्य में भी भटकने का भाव, वह कर्म का ही भाग है। उसके-कर्म के कारण भटके और वह कर्म है, वही जीव है। आहाहा! है ? बहुत गजब बात की है! अमृतचन्द्राचार्य ने मूल श्लोक (गाथा) का पाठ है इसमें, उसकी टीका की है न ? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक (गाथा) में यह है। आहाहा! है न यह ? **जीव अङ्गवसाणं कम्मं च तहा परुवेंति।**

पहली गाथा का चौथा पद - **कम्मं च तहा परुवेंति** - कर्म को आत्मा मानता है, अर्थात् परिभ्रमण का कारण कर्म है और परिभ्रमण के कारण से परिभ्रमण है, इसलिए कर्म, वह जीव है। आहाहा! अब क्या हो भाई! कठोर बात है, बापू! किसी ऐसे जीव को वह नहीं, इस प्रकार का इसे मिला है न ? मिला है न ? आहाहा!

यहाँ ऐसा कहते हैं - कर्म है, वही परिभ्रमण का कारण है और परिभ्रमण करता है, वह भी कर्म के कारण; इसलिए कर्म, जीव है - ऐसा अज्ञानी - नपुंसक जीव, अत्यन्त विमूढ़ जीव (मानते हैं)। आहाहा! दो शब्द है - नपुंसकपने, है न ? **क्लीबत्वेन - अत्यन्त विमूढाः** - दो शब्द संस्कृत में हैं। **क्लीबत्वेन - अत्यन्त विमूढाः** - संस्कृत है-पहली लाईन, है न ? **नपुंसकता से अत्यन्त विमूढ** - ऐसा शब्द है। आहा! यहाँ तो शब्द-शब्द का अर्थ है न ? संस्कृत में है।

बस, वह रामविजय कहे - कर्म से विकार होता है - ऐसा तुम मानो तो चर्चा करते हैं। वह यह बात है, आहाहा! और यह प्रश्न हुआ था न, यहाँ सुमनभाई और अपने जज कनुभाई.. जज-जज, अभी रिटायर्ड हो गये। सरकार ने अहमदाबाद में से रद्द किया, कुछ खटपट होगी। ये दोनों व्यक्ति पहले यहाँ थे न ? बहुत वर्ष पहले की बात है; फिर यहाँ से सुनकर गये रामविजय के पास - उनके गुरु के पास; उन्हें कहे कि आत्मा पर का कुछ नहीं करता। वह कहे कि परमाणु का नहीं करता, शरीर का करता है। परमाणु छोटा है न - ऐसा बारीक है न, उसे नहीं कर सकता, परन्तु यह जो शरीर है, उसका कर सकता है - ऐसा। भगवान भी, ऐसे कि वाणी ग्रहण करते हैं और फिर निकालते हैं, भाषा। ये कहे - यह हमारी मान्यता नहीं है। उन लोगों में चीज ही ऐसी है - कर्म का ही पूरा लेखन है।

सूयगडांग की पहली गाथा है - 'बुजेव जटीमटिया' कर्म को जानो ऐसा वहाँ है, 'बंधनम् परिहियाण्यां' - ऐसी वहाँ पहली गाथा है - 'बन्ध को जान' 'कर्म के बन्धन को जान।'

श्रोता : द्रव्यकर्म लेना या भावकर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़, जड़ का बन्धन है, उसे जान। ...शब्द भूल गये (हैं), उस समय कण्ठस्थ था। (हमने) कहा - इसमें भूल है। आहाहा! इसमें बात ऐसी है, भाई! जीव अपने को भूलकर अपनी पर्याय में भूल करता है। कर्म के कारण है, तो उस कर्म के कारण विकार और कर्म के कारण परिभ्रमण, कर्म के कारण चौरासी के अवतार तो वह कर्म के कारण है - ऐसा वे लोग मानते हैं। आहाहा! भारी कर्मी जीव ही भारी कर्मी मिथ्यात्व सेवे, वह भारी कर्मी है। है? यह क्रिया, उसरूप से क्रीड़ा करता हुआ,.. वह परिभ्रमण की क्रिया - ऐसे उसरूप क्रीड़ा करता हुआ (जो) कर्म, वही जीव है,.. क्योंकि परिभ्रमण के कारण के कर्म बिना कोई भिन्न जीव देखने में नहीं आता.. ऐसा कहते हैं। दो (बोल हुए)।

कोई कहते हैं कि तीव्र-मन्द अनुभव से भेदरूप होनेवाले.. रागरूप रस से भरे हुए मन्द और तीव्र, मन्द और तीव्र, बस! यही आत्मा है। राग की मन्दता, वह आत्मा और राग की तीव्रता, वह आत्मा। आहाहा! तीव्र-मन्द अनुभव से भेदरूप होनेवाले (दुरन्त) जिसका अनन्त दूर है.. विकार का अन्त कहाँ है, कहते हैं। अन्त न हो सके - ऐसा जो तीव्र-मन्द भाव, आहाहा! रागरूप रस से भरे हुए अध्यवसानों की जो सन्तति (परिपाटी) वही जीव है.. आहाहा! मन्दभाव-शुभयोग और तीव्रभाव-अशुभयोग, बस! वही जीव है।

श्रोता : वह पर्याय को जीव मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस विकृत को जीव माना है। आहाहा! बहुत कठिन काम है, भाई! अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ चाहिए। आहाहा! यह राग का परिणाम मन्द होवे तो भी मैं नहीं और तीव्र होवे तो भी मैं नहीं, यह कोई साधारण बात नहीं है, बापू! मैं तो ज्ञायक चैतन्य ज्योतिस्वरूप हूँ। उसमें तीव्र-मन्द राग का कोई अवकाश ही नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहते हैं कि पंचमकाल में शुभयोग ही होता है; मन्द राग, वह (ही) पंचमकाल में होता है, अर्थात् पंचमकाल में अजीवपना होता है। वस्तु की स्थिति ऐसी है,

हों! किसी व्यक्ति का अपने को काम नहीं है, यह तो उसका स्पष्टीकरण होता है। आहाहा! दृष्टि का बड़ा अन्तर.. जहाँ दृष्टि ही विपरीत है, वहाँ फिर व्रत और तप आये कहाँ से वहाँ? आहाहा! तीव्र-मन्द रागरूप रस से भरे हुए.. चाहे तो तीव्र-अशुभराग हो या मन्दराग हो, परन्तु उस राग का रस है उसमें, आत्मरस नहीं, **वही आत्मा है..** हमारे तो बस! शुभयोग से कल्याण होगा - ऐसा माननेवाले, शुभयोग को आत्मा मानते हैं, राग की मन्दता को आत्मा मानते हैं। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! ऐसा सूक्ष्म है जरा! अरे! भव का अन्त लाने की बातें बापू! आहाहा! अन्दर भगवान-प्रभु तो राग की मन्दता से भी भिन्न है, उसे आत्मा कहते हैं। राग की मन्दता, वह आत्मा नहीं है; वह तो वास्तव में पुद्गल का परिणाम है। आहाहा! राग को पुद्गल का परिणाम - अचेतन कहा है न! आहाहा! इस अपेक्षा से, हों! अन्य (लोग) कहते हैं - कर्म से (राग) होता है - ऐसा नहीं। स्वभाव में (राग) नहीं है और इसलिए राग मन्द होता है, वह इस अपेक्षा से पुद्गल का परिणाम है। पुनश्च कोई ऐसा कहे कि पुद्गल के कारण हुए, उसके कारण भटकना होता है - ऐसा नहीं।

अरे! यह! पण्डितजी! ऐसे सब भंग और भेद। एक ओर कहते हैं कि मन्द परिणाम भी मेरे पुरुषार्थ और उल्टे पुरुषार्थ से होता है, उस कर्म से नहीं, और वह मन्द पुरुषार्थ से होता है, वह मेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! ऐसा जो सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान, वह चैतन्य के अवलम्बन से होता है, वह ऐसा मानता है कि राग की मन्दता, मेरी नहीं है। राग की मन्दता से मुझे लाभ हो, वह मैं नहीं। आहाहा! ऐसा कि यह व्रत, तप, और भक्ति करते हैं, यह शुभभाव है; इस शुभभाव से शुद्धता होगी - तो इसका अर्थ यह हुआ कि राग का तीव्र रस और मन्द रस से अरागीपना होगा। आहाहा! हेय माने तो वह तो हो गया.. वह मेरा नहीं; होता है, तथापि ज्ञान जानता है कि मेरी चीज-वस्तु की चीज नहीं है; पर्याय की कमजोरी से हुआ है, वह कर्म के कारण नहीं हुआ। यहाँ तो सर्वस्व राग की तीव्रता और मन्दता, वह सर्वस्व है; फिर कोई राग रहित भगवान आत्मा है - यह हम नहीं जानते, कहते हैं। आहाहा! सब राग की क्रीड़ा है-मन्द राग या तीव्रराग। जो इस राग में राग का रस पड़ा है, बस! वही आत्मा है; उससे फिर अलग आत्मा हम जानते नहीं, मानते नहीं। आहाहा!

एक शब्द आता है बहिन के उसमें (वचनान्मृत में) कि 'राग से रहित होऊँगा तो

शून्य हो जाऊँगा' - शुभयोग छोड़ दूँगा तो शून्य हो जाऊँगा। है न? 'शुभराग छोड़ दूँगा तो शून्य हो जाऊँगा।' - ऐसा नहीं, प्रभु! शुभराग छूटेगा तो वहाँ निवड़ता (प्रगटता) ज्ञान और आनन्द की होगी; शून्यता नहीं होगी - ऐसा कहते हैं। शुभ ही भाव है पूरा; यह अब उसे छोड़ दूँगा तो शून्य हो जाऊँगा। ऐसा यहाँ कहते हैं; वही कहते हैं कि शुभभाव है, वही स्वयं है, उसे छोड़ देगा तो शून्य हो जाएगा.. परन्तु उसे छोड़ देगा तो आनन्द की दृढ़ता होगी। आहाहा! शुभ से मानो मैं हूँ, उस शुभ से और उसे छोड़ दूँगा तो शून्य हो जाऊँगा (- ऐसा अज्ञानी को लगता है।) आहाहा! भाई! भिन्न ही है; छोड़ना नहीं; छूटा हुआ ही है। आहाहा! शुभराग (तो) ज्ञायकभाव से भिन्न ही है, एक हुआ ही नहीं; आहाहा! उसे यहाँ कहते हैं कि हमें तो मन्द और तीव्र रागरस बस! यह एक मन्द और तीव्र, मन्द और तीव्र, बस! फिर राग का अभाव करना और ऐसा आत्मा, वह में नहीं (जँचता)। आहाहा! ऐसा काम है। विशेष कहेंगे, लो!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)